अध्याय-१
डेयरी पशुओं का आवास

पशु का आवास जितना अधिक स्वच्छ तथा आराम दायक होता है , पशु का स्वास्थ्य उतना ही अधिक ठीक रहता है जिससे वह अपनी क्षमता के अनुसार उतना ही अधिक दुग्ध उत्पादन करने में सक्षम हो सकता है। अतः दुधारू पशु के लिए साफ सुथरी तथा हवादार पशुशाला का निर्माण आवश्यक है क्योंकि इसके अभाव से पशु दुर्बल होजाता है और उसे अनेक प्रकार के रोग लग जाते हैं।

एक आदर्श गौशाला बनाने के लिए निम्न लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

(१) स्थान का चयन:

गौशाला का स्थान समतल तथा बाकी जगह से कुछ ऊंचा होना आवश्यक है ताकि वर्षा का पानी , मल-मूत्र तथा नालियों का पानी आदि आसानी से बाहर निकल सकें । यदि गहरे स्थान पर गौशाला बनायी जाती है तो इसके चारों ओर पानी तथा गंदगी एकत्रित होती रहती है जिससे गौशाला में हमेशा बदबू रहती है। गौशाला के स्थान पर सूर्य के प्रकाश का होना भी आवश्यक है। धूप कम से कम तीन तरफ से लगनी चाहिए । गौशाला की लम्बाई उत्तर-दक्षिण दिशा में होने से पूर्व व पश्चिम से सूर्य की रोशनी खिड़कियों व दरवाजों के द्वारा गौशाला में प्रवेश करेगी। सर्दियों में ठंडी व वर्फीली हवाओं से बचाव का ध्यान रखना भी जरूरी है।

(२) स्थान की पहुंच :

गौशाला का स्थान पशुपालक के घर के नजदीक होना चाहिए ताकि वह किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र गौशाला पहुंच सके। व्यापारिक माप पर कार्य करने के लिए गौशाला का सड़क के नजदीक होना आवश्यक है ताकि दूध लेजाने ,दाना चारा व अन्य सामान लाने -लेजाने में आसानी हो तथा खर्चा भी कम हो।

(३) बिजली, पानी की सुविधा:

गौशाला के स्थान पर बिजली व पानी की उपलब्धता का भी ध्यान रखना आवश्यक है क्योंकि डेयरी के कार्य के लिए पानी की पर्याप्त मात्रा में जरूरत होती है। इसी प्रकार वर्तमान समय में गौशाला के लिए बिजली का होना भी आवश्यक है क्योंकि रात को रोशनी के लिए तथा गर्मियों में पंखों के लिए इसकी जरूरत होती है।

(४) चारे, श्रम तथा विपणन की सुविधा:

गौशाला के स्थान का चयन करते समय चारे की उपलब्धता का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है क्यों कि चारे के बिना दुधारू पशुओं का पालना एक असम्भव कार्य है। हरे चारे के

उत्पादन के लिए पर्याप्त मात्रा में सिंचित कृषि योग्य भूमि का होना भी आवश्यक है। चारे की उपलब्धता के अनुरूप ही दुधारू पशुओं की संख्या रखी जानी चाहिए। पशुओं के कार्य के लिए श्रमिक की उपलब्धता भी उस स्थान पर होनी चाहिए क्योंकि बिना श्रमिक के बड़े पैमाने पर डेयरी का कार्य चलाना अत्यन्त कठिन होता है। डेयरी उत्पाद जैसे दूध,पनीर, खोया आदि के विपणन की सुविधा भी पास में होना आवश्यक है अत: स्थान का चयन करते समय डेयरी उत्पाद के विपणन सुविधा को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

(५) स्थान का वातावरण:

पशुशाला एक साफ सुथरे वातावरण में बनानी चाहिए। प्रदूषित वातावरण पशुओं के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है जिससे दुग्ध उत्पादन में कमी हो सकती है। पशुशाला के आसपास जंगली जानवरों का प्रकोप बहुत कम अथवा बिल्कुल नहीं होना चाहिए ताकि इनसे दुधारू पशुओं को खतरा न हो।

आवास बनाने की विधि:

दुधारू पशुओं का अवास सामान्यत: दो प्रकार का होता है: (क) बन्द आवास तथा (ख) खुला आवास।

(क) बन्द आवास:

इस विधि में पशु को बांध कर रखा जाता है तथा उसे उसी स्थान पर दाना -चारा दिया जाता है। पशु का दूध भी उसी स्थान पर निकाला जाता है। इसमें पशु को यदि चरागाह की सुविधा हो तो केवल चराने के लिए ही कुछ समय के लिए खोला जाता है अन्यथा वह एक ही स्थान पर बना रहता है।

इस प्रकार के आवास में कम स्थान की आवश्यकता है, पशुओं को अलग- अलग खिलाना , पिलाना संभव है, पशु की बीमारी का आसानी से पता लग जाता है तथा पशु आपस में लड़ाई नहीं कर सकते। उपरोक्त लाभों के साथ-साथ इस विधि में कुछ कमियां भी हैं जैसे कि : आवास निर्माण अधिक खर्चीला होता है, स्थान बढ़ाए बगैर पशुओं की संख्या बढ़ाना मुश्किल होता है, पशुओं को पूरी आजादी नहीं मिल पाती तथा मद मेंआए पशु का पता लगाना थोड़ा मुश्किल होता है।

(ख) खुला आवास:

इस विधि में पशुओं को एक घिरी हुई चार दीवारी के अंदर खुला छोड़ दिया जाता है तथा उनके खाने व पानी की व्यवस्था उसी में की जाती है। इस आवास को बनाने का खर्च अपेक्षाकृत कम होता है। इसमें श्रम की बचत होती है, पशुओं को ज्यादा आराम मिलता है तथा मद में आए पशु का पता आसानी से लगाया जा सकता है । इस विधि की प्रमुख कमियों में : इसमें अधिक स्थान की आवश्यकता पड़ती है, पशुओं को अलग - अलग खिलाना संभव नहीं है तथा मद में आए पशु दूसरे पसुओं को तंग करते हैं ।

(ग) अर्ध खुला आवास:

अर्ध खुला आवास बन्द तथा पूर्ण खुले आवासों की कमियों को दूर करता है। अतः

आवास की यह विधि पशु पालकों के लिए अधिक उपयोगी है। इसमें पशु को खिलाते, दूध निकालते अथवा इलाज करते समय बाँधा जाताहै, बाकी समय में उसे खुला रखा जाताहै । इस आवास में हर पशु को १२-१४ वर्ग मी. जगह की आवश्यकता होती है जिसमें से ४.२५ व.मी. (३.५ ु १.२ मी.)ढका हुआ तथा ८.६ व. मी. खुला हुआ रखा जाताहै। वयस्क पशु के लिए चारे की खुरली (नाँद) ७५ सेमी. चौडी तथा ४० सेमी. गहरी रखी जाती है जिसकी अगली तथा पिछली दीवारें क्रमशः ७५ व १३० सेमी. होती हैं। खड़े होने का स्थान १८०-२१० सेमी. लम्बा तथा खुरली के लिए १२० सेमी. रखा जाता है। फर्श का ढलान खुरली से गटर (नाली) की तरफ़ २.५ -४.० सेमी. होना चाहिए। खड़े होने का फर्श सीमेंट अथवा ईटों का बनाना चाहिए। गटर ३०-४० सेमी. चौड़ा तथा ५-७ सेमी. गहरा तथा इसके किनारे गोल रखने चाहिए । इसमें हर १.२ मी.के लिए २.५ सेमी. ढलान रखना चाहिए। बाहरी दीवारें १.५ मी.ऊंची रखी जानी चाहिए। इस विधि में बछड़ो - बछड़ियों तथा ब्याने वाले पशु के लिए अलग से ढके हुए स्थान में रखने की व्यवस्था की जाती है। प्रबंधक के बैठने तथा दाने चारे को रखने के लिए भी ढके हुए भाग में स्थान रखा जाता है।

गर्मियों के लिए शैड के चारों तरफ छायादार पेड़ लगाने चाहिए तथा सर्दियों तथा बरसात में में पशुओं को ढके हुए भाग में रखना चाहिए। सर्दियों में ठंडी हवा से बचाने के लिए बोरे अथवा पोलीथीन के पर्दे लगाए जा सकते हैं।

अध्याय -२.

गाय व भैंसों में सन्तुलित आहार

वैज्ञानिक दृष्टि से दुधारू पशुओं के शरीर के भार के अनुसार उसकी आवश्यकताओं जैसे जीवन निर्वाह, विकास, तथा उत्पादन आदि के लिए भोजन के विभिन्न तत्व जैसे प्रोटीन, कार्बोहायड्रेट्स,वसा, खनिज, विटमिन्स तथा पानी की आवश्यकता होती है। पशु को २४ घंटों में खिलाया जाने वाला आहार (दाना व चारा) जिसमें उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भोज्य तत्व मौजूद हों , पशु आहार कहते हैं। जिस आहार में पशु के सभी आवश्यक पोषक तत्व उचित अनुपात तथा मात्रा में उपलव्ध हों , उसे संतुलित आहार कहते हैं।

पशुओं में आहार की मात्रा उसकी उत्पादकता तथा प्रजनन की अवस्था पर निर्भर करती है। पशु को कुल आहार का २/३ भाग मोटे चारे से तथा १/३ भाग दाने के मिश्रण द्वारा मिलना चाहिए। मोटे चारे में दलहनी तथा गैर दलहनी चारे का मिश्रण दिया जा सकता है। दलहनी चारे की मात्रा आहार में बढ़ाने से काफी हद तक दाने की मात्रा को कम किया जासकता है।

वैसे तो पशु के आहार की मात्रा का निर्धारण उस के शरीर की आवश्यकता व कार्य के अनुरूप तथा उपलब्ध भोज्य पदार्थों में पाए जाने वाले पोषक तत्वों के आधार पर गणना करके किया जाता है लेकिन पशुपालकों को गणना कार्य की कठिनाई से बचाने के लिए थम्ब रूल को अपनाना अधिक सुविधा जनक है। इसके अनुसार हम मोटे तौर पर व्यस्क दुधारू पशु के आहार को तीन वर्गों में बांट सकते हैं। १. जीवन निर्वाह के लिए आहार २. उत्पादन के लिए आहार तथा ३. गर्भावस्था के लिए आहार।

१. जीवन निर्वाह के लिए आहार:- यह आहार की वह मात्रा है जिसे पशु को अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए दिया जाता है। इसे पशु अपने शरीर के तापमान को उचित सीमा में बनाए रखने , शरीर की आवश्यक क्रियायें जैसे पाचन क्रिया, रक्त परिवहन, श्वसन, उत्सर्जन, चयापचय आदि के लिए काम में लाता है। इससे उसके शरीर का बजन भी एक सीमा में स्थिर बना रहता है। चाहे पशु उत्पादन में हो या न हो इस आहार को उसे देना ही पड़ता है इसके अभाव में पशु कमजोर होने लगता है जिसका असर उसकी उत्पादकता तथा प्रजनन क्षमता पर पड़ता है। इस में देसी गाय (ज़ेबू) के लिए तूड़ी अथवा सूखे घास की मात्रा ४ किलो तथा संकर गाय , शुद्ध नस्ल की देशी गाय अथवा भैंस के लिए यह मात्रा ४ से ६ किलो तक होती है। इसके साथ पशु को दाने का मिश्रण भी दिया जाता है जिसकी मात्रा स्थानीय देसी गाय (ज़ेबू) के लिए १ से १.२५ किलो तथा संकर गाय, शुद्ध नस्ल की देशी गाय या भैंस के लिए इसकी मात्रा २.० किलो रखी जाती है।

इस विधि द्वारा पशु को खिलाने के लिए दाने का मिश्रण उचित अवयवों को ठीक अनुपात में मिलाकर बना होना आवश्यक है। इसके लिए पशुपालक स्वयं निम्नलिखित घटकों को दिए हुए अनुपात में मिलाकर सन्तोषजनक पशु दाना बना सकते हैं।

खलियां .... *२५-३५ प्रतिशत*

(मूंगफली,सरसों, तिल,बिनौला, अलसी आदि की खलें)

मोटे अनाज	.....	*२५-३५ प्रतिशत*
(गेहूं, जौ, मक्की, जुआर आदि)		
अनाज के बाईप्रोडक्क्ट्स	.....	*१०-३० प्रतिशत*
(चोकर, चून्नी, चावल की फक आदि)		
खनिज मिश्रण	.....	*२ प्रतिशत*
आयोडीन युक्त नमक	.....	*१ प्रतिशत*
विटामिन्स ए.डी.-३ का मिश्रण	.....	*२०-३० ग्रा. प्रति १०० किलो*

२. उत्पादन के लिए आहार :

उत्पादन आहार पशु आहार की वह मात्रा है जिसे कि पशु को जीवन निर्वाह के लिए दिए जाने वाले आहार के अतिरिक्त उसके दूध उत्पादन के लिए दिया जाता है। इसमें स्थानीय गाय (ज़ेबू)के लिए प्रति २.५ किलो दूध के उत्पादन के लिए जीवन निर्वाह आहार के अतिरिक्त १ किलो दाना देना चाहिए जबकि संकर/देशी दुधारू गायों/भैंसों के लिए यह मात्रा प्रति २ किलो दूध के लिए दी जाती है। यदि हरा चारा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तो हर १० किलो अच्छे किस्म के हरे चारे को देकर १ किलो दाना कम किया जा सकता है। इससे पशु आहार की कीमत कुछ कम हो जाएगी और उत्पादन भी ठीक बना रहेगा । पशु को दुग्ध उत्पादन तथा जीवन निर्वाह के लिए साफ पानी दिन में कम से कम तीन बार जरूर पिलाना चाहिए।

३. गर्भावस्था के लिए आहार:

पशु की गर्भावस्था में उसे ५वें महीने से अतिरिक्त आहार दिया जाता है क्योंकि इस अवधि के बाद गर्भ में पल रहे बच्चे की वृद्धि बहुत तेजी के साथ होने लगती है। अतः गर्भ में पल रहे बच्चे की उचित वृद्धि व विकास के लिए तथा गाय/भैंस के अगले ब्यांत में सही दुग्ध उत्पादन के लिए इस आहार का देना नितान्त आवश्यक है। इसमें स्थानीय गायों (ज़ेबू कैटल) के लिए १.२५ किलो तथा संकर नस्ल की गायों व भैंसों के लिए १.७५ किलो अतिरिक्त दाना दिया जाना चाहिए। अधिक दूध देने वाले पशुओं को गर्भावस्था के ८वें माह से अथवा ब्याने के ६ सप्ताह पहले उनकी दुग्ध ग्रन्थियों के पूर्ण विकास के लिए पशु की इच्छानुसार दाने की मात्रा बढ़ा देना चाहिए। इस के लिए ज़ेबू नस्ल के पशुओं में ३ किलो तथा संकर गायों व भैंसों में ४-५ किलो दाने की मात्रा पशु की निर्वाह आवश्यकता के अतिरिक्त दिया जाना चाहिए। इससे पशु अगले ब्यांत में अपनी क्षमता के अनुसार अधिकतम दुग्धोत्पादन कर सकते हैं।

अध्याय-३.

नवजात बछड़ियों की देखभाल

पशु पालकों को डेयरी फार्मिंग से पूरा लाभ उठाने के लिए नव जात बछड़ियों की उचित देखभाल व पालन -पोषण करके उनकी मृत्यु दर घटाना आवश्यक है। नवजात बछड़ियों को स्वस्थ रखने तथा उनकी मृत्यु दर कम करने के लिए हमें निम्नलिखित तरीके अपनाने चाहिए:

(१) गाय अथवा भैंस के ब्याने के तुरन्त बाद बच्चे के नाक व मुंह से श्लैष्मा व झिल्ली को साफ कर देना चाहिए ताकि उसकी साँस लेने की क्रिया में रुकावट पैदा न हो। इसके अतिरिक्त माँ को उसे चाटने देना चाहिए जिससे बच्चे के शरीर में रक्त का संचार सुचारु रूप से होसके।

(२) बच्चे की नाभि को ऊपर से १/२ इंच छोड़कर किसी साफ कैंची से काट देना चाहिए तथा उस पर टिंचर आयोडीन लगानी चाहिए।

(३) जन्म के २ घंटे के अंदर बच्चे को माँ का पहला दूध (खीस) अवश्य पिलाना चाहिए । खीस एक प्रकार का गाढ़ा दूध होताहै जिसमें साधारण दूध की अपेक्षा विटामिन्स, खनिज तथा प्रोटीन्स की मात्रा अधिक होती है। इसमें रोग निरोधक पदार्थ जिन्हें एन्टीवॉडीज कहते हैं भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। एन्टीबॉडीज नवजात बच्चे को रोग ग्रस्त होने से बचाती हैं । खीस में दस्तावर गुण भी होते हैं जिससे नवजात बच्चे की आंतों में जन्म से पहले का जमा मल (म्युकोनियम) बाहर निकल जाता है तथा उसका पेट साफ होजाता है । खीस को बच्चे के पैदा होने के ४-५ दिन तक नियमित अन्तराल पर अपने शरीर के बजन के दसवें भाग के बराबर पिलानी चाहिए। अधिक मात्रा में खीस पिलाने से बच्चे को दस्त लग सकते हैं।

यदि किसी कारणवश (जैसे माँ की अकस्मात् मृत्यु अथवा माँ का अचानक बीमार पड़ जाना आदि) खीस उपलब्ध न हो तो किसी और पशु की खीस को प्रयोग किया जा सकता है । और यदि कहीं और भी यह उपलब्ध न हो तो नवजात बच्चे को निम्न लिखित मिश्रण दिन में ३-४ बार दिया जा सकता है। ३०० मि.ली. पानी को उबाल कर ठंडा कर के उसमें एक अंडा फेंट लें । इस में ६०० मि.ली. साधारण दूध व आधा चम्मच अंडी का तेल मिलायें। फिर इस मिश्रण में एक चम्मच फिश लिवर ओयल तथा ८० मि. ग्रा. औरियोमायसीन पाउडर मिलायें । इस मिश्रण को देने से बच्चे को कुछ लाभ होसकता है लेकिन फिर भी यह प्राकृतिक खीस की तुलना नहीं कर सकता

क्योंकि प्राकृतिक खीस में पायी जाने वाली एंटीबॉडीज नवजात बच्चे को रोग से लड़ने की क्षमता प्रदान करती हैं। खीस पीने के दो घंटे के अंदर बच्चा म्युकोनियम (पहला मल) निकाल देता है लेकिन ऐसा न होने पर बच्चे को एक चम्मच सोडियम बाई कार्बोनेट को एक लीटर गुनगुने पानी में घोल कर एनीमा दिया जासकता है।

(४) कई बार नवजात बच्चे में जन्म से ही मल द्वार नहीं होता इसे एट्रेसिया एनाई कहते हैं। यह एक जन्म जात बीमारी है तथा इसके कारण बच्चा मल विसर्जन नहीं कर सकता और वह बाद में मृत्यु का शिकार हो जाता है। इस बीमारी को एक छोटी सी शल्य क्रिया द्वारा ठीक किया जासकता है। मल द्वार के स्थान पर एक + के आकार का चीरा दिया जाता है तथा शल्य क्रिया द्वारा मल द्वार बना कर उसको मलाशय (रेक्टम) से जोड़ दिया जाता है जिससे बच्चा मल विसर्जन करने लगता है। यह कार्य पशु पालक को स्वयं न करके नजदीकी पशु चिकित्सालय में कराना चाहिए क्योंकि कई बार इसमें जटिलतायें पैदा होजाती हैं।

(५) कभी कभी बच्छियों में जन्म से ही चार थनों के अलावा अतिरिक्त संख्या में थन पाए जाते हैं। अतिरिक्त थनों को जन्म के कुछ दिन बाद जीवाणु रहित की हुई कैंची से काट कर निकाल देना चाहिए। इस क्रिया में सामान्यतः खून नहीं निकलता। अतिरिक्त थनों को न काटने से बच्छी के गाय बनने पर उससे दूध निकालते समय कठिनाई होती है।

(६) यदि पशु पालक बच्चे को माँ से अलग रखकर पालने की पद्यति को अपनाना चाहता है तो उसे बच्चे को शुरू से ही बर्तन में दूध पीना सिखाना चाहिए तथा उसे माँ से जन्म से ही अलग कर देना चाहिए। इस पद्यति में बहुत सफाई तथा सावधानियों की आवश्यकता होती हैं जिनके बिना बच्चों में अनेक बीमारियों के होने की संभावना बढ़ जाती है।

(७) नव जात बच्चों को बड़े पशुओं से अलग एक बाड़े में रखना चाहिए ताकि उन्हें चोट लगने का खतरा न रहे। इसके अतिरिक्त उनका सर्दी व गर्मी से भी पूरा बचाव रखना आवश्यक है।

अध्याय-४.

बछड़ों/बच्छियों को सींग रहित करने का सही समय व लाभ

पशुओं में सींग अपनी रक्षा तथा बचाव के लिए होते हैं जिससे वे दूसरे पशुओं पर हमला करते हैं। सींगों से पशुओं के नस्ल की पहचान भी होती है। लेकिन सींगों बाले पशुओं को नियंत्रित करना तथा उनके साथ काम करना मुश्किल होता हैं क्योंकि इनसे अन्य पशुओं तथा उनके साथ काम करने वाले मनुष्यों को चोट लगने का सदैव भय रहता है। सींग टूट जाने पर पशु

को बहुत तकलीफ होती है तथा सींग बाले पशुओं को होर्न कैंसर होने का भी खतरा रहता है। अतः आधुनिक व वैज्ञानिक तरीके से डेयरी फार्मिंग करने के लिये पशुओं को बचपन से ही सींग रहित कर दिया जाता है। सींग रहित पशुओं के साथ गौशाला में काम करना आसान होता है तथा ऐसे पशु गौशाला में कम स्थान घेरते हैं । सींग रहित पशु देखने में भी सुन्दर लगते हैं तथा उनकी बाजार में कीमत भी अपेक्षाकृत अधिक होती है।

बछड़ों/बच्छियों को सींग रहित करने के लिए जन्म के कुछ दिन बाद उनके सींगों की जड़ को दवा अथवा शल्य क्रिया द्वारा नष्ट कर दिया जाता है। यह कार्य गाय के बच्चे की १०-१५ दिन की आयु तथा भैंस के बच्चे की ७-१० दिन की आयु में अवश्य करा लेना चाहिए क्योंकि तब तक सींग की जड़ कपाल की हड्डी (स्कल) से अलग होती है जिसे आसानी से निकाला जासकता है। इससे अधिक आयु के बच्चे को सींग रहित करने से उसे लकलीफ होती है। पहले बछड़े/ बच्छियों को सींग रहित करने के लिए उनके सींग के निकलने के स्थान पर कास्टिक पोटाश का प्रयोग किया जाता था जिससे सींग की जड़ नष्ट हो जाती थी । लेकिन अब यह कार्य एक विशेष बिजली का यंत्र जिसे इलेक्ट्रिक डिहोर्नर कहते हैं के साथ एक छोटी सी शल्य क्रिया द्वारा किया जाता है। शल्य क्रिया से पहले सींगों की जड़ों वाले स्थान को इन्जेकशन देकर संज्ञाहीन(सुन्न) कर लिया जाताहै जिससे शल्य क्रिया के दौरान पशु को तकलीफ महसूस नहीं होती। सींग रहित करने के स्थान पर चमड़ी में थाड़े से घाव होजाते हैं जिन पर एन्टीसेप्टिक क्रीम लगाने से वे कुछ दिनों में ठीक होजाते हैं। बड़े पशुओं को सींग रहित करना कुछ मुश्किल होता है क्योंकि इसमें बड़ी शल्य क्रिया करने की आवश्यकता होती है तथा घाव भी बड़ा होता है जिसके ठीक होने में कुछ अधिक समय लगता है।

अध्याय-५

गाय व भैंसों में मद चक्र , मद काल व मद के लक्षण

दुग्ध पशुओं में प्रजनन कार्यक्रम की सफलता के लिए पशु पालक को मादा पशु में पाए जाने वाले मद चक्र का जानना बहुत आवश्यक है। गाय या भैंस सामान्य तौर पर हर १८ से २१ दिन के बाद गर्मी में आती है जब तक कि वह गर्भ धारण न कर ले। बच्छी में यह चक्र १६ से १८ माह की उम्र पूर्ण होने तथा शरीर का बजन लगभग २५० किलो होने पर शुरु होता है। गाय व भैंसों में ब्याने के लगभग डेढ़ माह के बाद यह चक्र शुरू हो जाता है। मद चक्र शरीर में कुछ खास न्यासर्गो (हार्मोन्स) के स्राव से संचालित होता है।

गाय व भैंसों में मदकाल (गर्मी की अवधि) लगभग २० से ३६ घंटे का होता है जिसे हम ३ भागों में बांट सकते हैं

(१) मद की प्रारम्भिक अवस्था (२) मद की मध्यावस्था (३) मद की अन्तिम अवस्था। मद की विभिन्न अवस्थाओं का हम पशुओं में बाहर से कुछ विशेष लक्षणों को देख कर पता लगा सकते हैं ।

मद की प्रारम्भिक अवस्था:

(१) पशु की भूख में कमी आना।
(२) दूध उत्पादन में कमी ।
(३) पशु का रम्भाना(बोलना) व बेचैन रहना।
(४) योनि से पतले श्लैष्मिक पदार्थ का निकलना ।
(५)दूसरे पशुओं से अलग रहना।
(६) पशु का पूंछ उठाना।
(७) योनि द्वार (भग) का सूजना तथा बार -बार पेशाब करना।
(८) शरीर के तापमान में मामूली सी वृद्धि।

मद की मध्यावस्था:

गर्मी की यह अवस्था बहुत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि कृत्रिम गर्भाधान के लिए यही अवस्था सबसे उपयुक्त मानी जाती है। इसकी अवधि लगभग १० घंटे तक रहती है। इस अवस्था में पशु काफी उत्तेजित दिखता है तथा वह अन्य पशुओं में रुचि दिखाता है।
यह अवस्था निम्नलिखित लक्षणों से पहचानी जा सकती है।
(१) योनि द्वार(भग) से निकलने वाले श्लैष्मिक पदार्थ का गाढ़ा होना जिससे वह बिना टूटे नीचे तक लटकता हुआ दिखायी देताहै।
(२) पशु जोर-जोर से रम्भाने (बोलने) लगता है।
(३) भग (योनि द्वार) की सूजन तथा श्लैष्मिक झिल्ली की लाली में वृद्धि हो जाती है।
(४) शरीर का ताप मान बढ़ जाता है।
(५) दूध में कमी तथा पीठ पर टेढ़ापन दिखायी देता है।
(६) पशु अपने ऊपर दूसरे पशुओं को चढ़ने देता है अथवा वह खुद दूसरे पशुओं पर चढ़ने लगता है ।

मद की अन्तिम अवस्था:

(१) पशु की भूख लगभग सामान्य होजाती है।
(२) दूध की कमी भी समाप्त होजाती है।
(३) पशु का रम्भाना कम होजाता है।
(४) भग की सूजन व श्लैष्मिक झिल्ली की लाली में कमी आजाती है।
(५) श्लैष्मा का निकलना या तो बन्द या फिर बहुत कम होजाता है तथा यह बहुत गाढ़ा व कुछ अपारदर्शी होने लगता है।

गर्भाधान कराने का सही समय :

पशु में मद काल के प्रारम्भ होने के १२ से १८ घंटे बाद अर्थात मद काल के द्वितीय अर्ध भाग में उसमें गर्भाधान कराना सबसे अच्छा रहता है। मोटे तौर पर जो पशु सुबह गर्मी में दिखायी दे उसमें दोपहर के बाद तथा जो शाम को मद में दिखायी दे उसमें अगले दिन सुबह गर्भाधान कराना

चाहिए। टीका लगाने का उपयुक्त समय वह है जब पशु दूसरे पशु के अपने ऊपर चढ़ने पर चुपचाप खड़ा रहे। इसे स्टेंडिंग हीट कहते हैं। बहुत से पशु मद काल में रम्भाते नहीं हैं लेकिन गर्मी के अन्य लक्षणों के आधार पर उन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है।

पशुओं के मद चक्र पर ऋतुओं का प्रभाव:

वैसे तो साल भर पशु गर्मी में आते रहते हैं लेकिन पशुओं के मद चक्र पर ऋतुओं का प्रभाव भी देखने में आता है। हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले में वर्ष १९९० से २००० तक किये गये कृत्रिम गर्भाधान कार्य के एक विश्लेषण के अनुसार माह जून में सबसे अधिक (११.१%) गायें गर्मी में देखी गयीं जबकि सबसे कम (६.७१%) गायें माह अक्टूबर में मद में पायी गयीं । प्रजनन के दृष्टिकोण से गायों में सबसे अच्छा त्रैमास मई-जून-जुलाई रहा जिसमें २९.७४% गायों को मद में देखा गया जबकि त्रैमास सितम्बर -अक्तूबर - नवम्बर में सबसे कम(२१.९%)गायें गर्मी में प्राप्त हुईं। भैंसों में ऋतुओं का प्रभाव बहुत अधिक पाया जाता है। उपरोक्त वर्षों में माह मार्च से अगस्त तक छः माह की अवधि में जिसमें दिन की लम्बाई अधिक होती है वर्ष की २६.१७% भैंसें मद में रिकार्ड की गयीं जबकि शेष छः माह सितम्बर से फरवरी की अवधि में जिसमें दिन छोटे होते हैं, वर्ष की बाकी ७३.८३% भैंसें गर्मी में पायी गयीं। गायों के विरुद्ध भैंसों में त्रैमास मई-जून-जुलाई प्रजनन के हिसाब से सबसे खराब रहा जिसमें केवल ११.११% भैंसें गर्मी में देखी गयीं जबकि त्रैमास अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर सर्वोत्तम पाया गया जिसमें ४४.१३% भैंसों को मद में रिकार्ड किया गया। पशु प्रबन्धन में सुधार करके तथा पशुपालन में आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों को अपना कर पशुओं के प्रजनन पर ऋतुओं के कुप्रभाव को जिससे पशु पालकों को बहुत हानि होती है, काफी हद तक कम किया जा सकता है।

अध्याय- ६
कृत्रिम गर्भाधान के लाभ व सीमायें

कृ० ग० के लाभ:

प्राकृतिक गर्भाधान की तुलना में कृ०ग० के अनेक लाभ हैं जिनमें प्रमुख लाभ निम्न

लिखित हैं ।

(१) कृत्रिम गर्भाधान तकनीक द्वारा श्रेष्ठ गुणों वाले साँड़ को अधिक से अधिक प्रयोग किया जा सकता है । प्राकृतिक विधि में एक साँड़ द्वारा एक वर्ष में ५०-६० गाय या भैंसों को गर्भित किया जा सकता है जबकि कृ०ग० विधि द्वारा एक साँड़ के वीर्य से एक वर्ष में हजारों की संख्या में गायों या भैंसों को गर्भित किया जा सकता है।

(२) इस विधि में धन एवं श्रम की बचत होती है क्योंकि पशु पालक को साँड़ पालने की आवश्यकता नहीं होती।

(३) कृ०ग० में बहुत दूर यहाँ तक कि विदेशों में रखे उत्तम नस्ल व गुणों वाले साँड़ के वीर्य को भी गाय व भैंसों में प्रयोग करके लाभ उठाया जासकता है।

(४) अत्योत्तम साँड़ के वीर्य को उसकी मृत्यु के बाद भी प्रयोग किया जासकता है।

(५) इस विधि में उत्तम गुणों वाले बूढ़े या घायल साँड़ का प्रयोग भी प्रजनन के लिए किया जा सकता है।

(६) कृ०ग० में साँड़ के आकार या भार का मादा के गर्भाधान के समय कोई फर्क नहीं पड़ता।

(७) इस विधि में विकलांग गायों/भैसों का प्रयोग भी प्रजनन के लिए किया जा सकता है।

(८) कृ०ग० विधि में नर से मादा तथा मादा से नर में फैलने वाले संक्रामक रोगों से बचा जा सकता है ।

(९) इस विधि में सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है जिससे मादा की प्रजनन की बीमारियों में काफी हद तक कमी आजाती है तथा गर्भ धारण करने की दर भी बढ़ जाती है ।

(१०) इस विधि में पशु का प्रजनन रिकार्ड रखने में भी आसानी होती है।

कृत्रिम गर्भाधान विधि की सीमायें:

कृत्रिम गर्भाधान के अनेक लाभ होने के बावजूद इस विधि की अपनी कुछ सीमायें हैं जो मुख्यतः निम्न प्रकार हैं।

(१) कृ०ग० के लिए प्रशिक्षित व्यक्ति अथवा पशु चिकित्सक की आवश्यकता होती है तथा कृ०ग० तक्नीशियन को मादा पशु प्रजनन अंगों की जानकारी होना आवश्यक है।

(२) इस विधि में विशेष यन्त्रों की आवश्यकता होती है।

(३) इस विधि में असावधानी वरतने तथा सफाई का विशेष ध्यान न रखने से गर्भ धारण की दर में कमी आजाती है।

(४) इस विधि में यदि पूर्ण सावधानी न वरती जाये तो दूर वर्ती क्षेत्रों अथवा विदेशों से वीर्य के साथ कई संक्रामक बीमारियों के आने का भी भय रहता है।

अध्याय- ७

बधियाकरण

नर पशु के दोनों अण्ड कोषों अथवा मादा के दोनों अंडाशयों को निकालकर उसे नपुंसक बनाने की क्रिया को बधियाकरण कहते हैं। उन्नत पशु प्रजनन कार्यक्रम की सफलता के लिए अवांक्षित नर पशुओं का बधियाकरण वहुत ही आवश्यक कार्य है जिसके बिना डेयरी पशुओं की नस्ल में सुधार करना असम्भव है। बछड़ों में बधियाकरण की उचित आयु २ से ८ माह के बीच होती है।

बधियाकरण के लाभ:

(१) बधियाकरण द्वारा निम्न स्तर के पशु के वंश को आगे बढ़ने से रोका जा सकता है जिससे उसके द्वारा असक्षम एवं अवांक्षित सन्तान पैदा ही नहीं होती जोकि सफल एवं लाभकारी पशुपालन के लिए आवश्यक है।

(२) बधिया किए गये नर पशु को मादा पशुओं के साथ बिना किसी कठिनाई के रखा जा सकता है क्योंकि वह मद में आई मादा के ऊपर नहीं चढ़ता।

(३) बधिया किए गये पशु को आसानी से नियन्त्रित किया जा सकता है।

(४) बधियाकरण से माँस के लिये प्रयोग होने वाले पशुओं के माँस की गुणवत्ता बढ़ जाती है।

बधियाकरण की विधियाँ:

पालतू पशुओं में बधियाकरण सबसे पुरानी शल्य क्रिया समझी जाती है। बधियाकरण निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है।

(क) शल्य क्रिया द्वारा बधियाकरण :

इस विधि में शल्य क्रिया द्वारा अंडकोषों के ऊपर चढ़ी चमड़ी (स्क्रोटम)को काटकर दोनों अंडकोषों को निकाल दिया जाता है। इस क्रिया में पशु के एक छोटा सा घाव होजाता है जोकि एंटीसेप्टिक दबाइयों के प्रयोग करके कुछ समय के पश्चात् ठीक हो जाता है।

(ख) बर्डिजो कास्ट्रेटर द्वारा बधियाकरण:

यह विधि आज-कल नर गोपशुओं व भैंसों में बधियाकरण के लिये सर्वाधिक प्रचलित है। इसमें एक विशेष प्रकार का यंत्र जिसे बर्डिजो कास्ट्रेटर कहते हैं प्रयोग किया जाता है। इस विधि में रक्त बिल्कुल भी नहीं निकलता क्योंकि इसमें चमड़ी को काटा नहीं जाता। इसमें पशु के अंड कोषों से ऊपर की ओर जुड़ी स्पर्मेटिक कोर्ड जोकि चमड़ी के नीचे स्थित होती है, को इस यन्त्र के द्वारा बाहर से दबा कर कुचल दिया जाता है जिससे अंडकोषों में खून का दौरा बन्द होजाता है । फलवरूप अंडकोष स्वतः ही सूख जाते हैं।

बर्डिजो कास्ट्रेटर द्वारा बधियाकरण करते समय निम्न लिखित सवधानियाँ बरतना आवश्यक है।

१. बर्डिजो कास्ट्रेटर को दबाते समय स्पर्मेटिक कोर्ड स्लिप नहीं करनी चाहिये।

२. कास्ट्रेटर में अंडकोष नहीं दबना चाहिये अन्यथा अंडकोषों में भारी सूजन आजाती है जिससे पशु को तकलीफ होती है।

३. कास्ट्रेटर में चमड़ी का फोल्ड नहीं आना चाहिए क्योंकि इससे चमड़ी के नीचे घाव होने का खतरा रहता है।

४. कास्ट्रेटर को प्रयोग करने से पहले ठीक प्रकार से साफ कर लेना चाहिए ।

(ग) रबड़ के छल्ले द्वारा बधियाकरण:

पश्चिमी देशों में प्रचलित यह विधि बहुत छोटी उम्र के बछड़ों में प्रयोग की जाती है। इसमें रबड़ का एक मजबूत व लचीला छल्ला अंड कोषों के ऊपरी भाग में स्थित स्परमेटिक कोर्ड के ऊपर चढ़ा दिया जाता है जिसके दबाव से अंडकोषों में खून का दौरा बन्द होजाता है। इससे अंडकोष सूख जाते हैं तथा रबड़ का छल्ला अंडकोषों से निकल कर नीचे गिर जाता है।

अध्याय -८

दुधारू पशुओं के प्रमुख रोग व उनका उपचार

दुधारू पशुओं में अनेक कारणों से बहुत सी बीमारियाँ होती हैं । सूक्ष्म विषाणु, जीवाणु, फफूंदी, अंतः व बाह्य परजीवी, प्रोटोजोआ, कुपोषण तथा शरीर के अंदर की चयापचय

(मेटाबोलिज्म) क्रिया में विकार आदि प्रमुख कारणों में हैं। इन बीमारियों में बहुत सी जानलेवा बीमारियाँ हैं तथा कई बीमारियाँ पशु के उत्पादन पर कुप्रभाव डालती हैं। कुछ बीमारियाँ एक पशु से दूसरे पशु को लग जाती हैं जैसे मुंह व खुर की बीमारी, गल घोंटू आदि, इन्हें छूतदार रोग कहते हैं। कुछ बीमारियाँ पशुओं से मनुष्यों में भी आजाती हैं जैसे रेबीज (हलक जाना), क्षय रोग आदि , इन्हें जुनोटिक रोग कहते हैं । अतः पशु पालक को प्रमुख बीमारियों के बारे में जानकारी रखना आवश्यक है ताकि वह उचित समय पर उचित कदम उठा कर अपना आर्थिक हानि से बचाव तथा मानव स्वास्थ्य की रक्षा में भी सहयोग कर सके । दुधारू पशुओं के प्रमुख रोग निम्न लिखित हैं :

(क) विषाणु जनित रोग -

१.मुंह व खुर की बीमारी:

सूक्ष्म विषाणु (वायरस) से पैदा होने बाली इस बीमारी को विभिन्न स्थानों पर विभिन्न स्थानीय नामों से जाना जाता है जैसेकि खरेड़, मुंह पका-खुर पका , चपका, खुरपा आदि। यह बहुत तेजी से फैलने वाला छूतदार रोग है जोकि गाय , भैंस, भेड़, बकरी, ऊंट, सुअर आदि पशुओं में होता है। विदेशी व संकर नस्ल की गायों में यह बीमारी अधिक गम्भीर रूप में पायी जाती है। यह बीमारी हमारे देश में हर स्थान पर होती है। इस रोग से ग्रस्त पशु ठीक होकर अत्यन्त कमजोर होजाते हैं। दुधारू पशुओं में दूध का उत्पादन बहुत कम होजाता है तथा बैल काफी समय तक काम करने योग्य नहीं रहते। शरीर पर बालों का कवर खुरदरा तथा खुर कुरूप होजाते हैं।

रोग का कारण:- मुंहपका-खुरपका रोग एक अत्यन्त सूक्ष्म विषाणु जिसके अनेक प्रकार तथा उप-प्रकार हैं, से होता है। इनकी प्रमुख किस्मों में ओ, ए, सी, एशिया-१, एशिया-२, एशिया-३, सैट-१, सैट-२, सैट-३ तथा इनकी १४ उप-किस्में शामिल हैं। हमारे देश में यह रोग मुख्यतः ओ, ए, सी तथा एशिया-१ प्रकार के विषाणुओं द्वारा होता है। नम-वातावरण, पशु की आन्तरिक कमजोरी, पशुओं तथा लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन तथा नजदीकी क्षेत्र में रोग का प्रकोप इस बीमारी को फैलाने में सहायक कारक हैं।

संक्रमण विधि:- यह रोग बीमार पशु के सीधे सम्पर्क में आने ,पानी, घास ,दाना,बर्तन,दूध निकालने वाले व्यक्ति के हाथों से, हवा से तथा लोगों के आवागमन से फैलता है। रोग के विषाणु बीमार पशु की लार , मुंह, खुर व थनों में पड़े फफोलों में बहुत अधिक संख्या में पाए जाते हैं। ये खुले में घास, चारा तथा फर्श पर चार महीनों तक जीवित रह सकते हैं लेकिन गर्मी के मौसम में ये बहुत जल्दी नष्ट होजाते हैं। विषाणु जीभ, मुंह, आंत, खुरों के बीच की जगह, थनों तथा घाव आदि के द्वारा स्वस्थ पशु के रक्त में पहुंचते हैं तथा लगभग ५ दिनों के अंदर उसमें बीमारी के लक्षण पैदा करते हैं।

रोग के लक्षण :- रोग ग्रस्त पशु को १०४-१०६ डि. फारेनहायट तक वुखार होजाता है। वह खाना-पीना व जुगाली करना बन्द कर देता है। दूध का उत्पादन गिर जाता है। मुंह से लार बहने लगती है तथा मुंह हिलाने पर चप -चप की आवाज आती है इसी कारण इसे चपका रोग भी कहते

हैं। तेज वुखार के बाद पशु के मुंह के अंदर, गालों, जीभ, होंठ, तालू व मसूड़ों के अंदर , खुरों के बीच तथा कभी-कभी थनों व अयन पर छाले पड़ जाते हैं। ये छाले फटने के बाद घाव का रूप ले लेते हैं जिससे पशु को बहुत दर्द होने लगता है। मुंह में घाव व दर्द के कारण पशु खाना -पीना बन्द कर देता है जिससे वह बहुत कमजोर हो जाता है। खुरों में दर्द के कारण पशु लंगड़ा चलने लगता है। गर्भवती मादा में कई बार गर्भपात भी हो जाता है। नवजात बच्छे/बच्छियाँ बिना किसी लक्षण दिखाए मर जाते हैं। लापरवाही होने पर पशु के खुरों में कीड़े पड़ जाते हैं तथा कई बार खुरों के कवच भी निकल जाते हैं। हालांकि व्यस्क पशु में मृत्यु दर कम (लगभग १०%)है लेकिन इस रोग से पशु पालक को आर्थिक हानि बहुत ज्यादा उठानी पड़ती है। दूध देने वाले पशुओं में दूध के उत्पादन में कमी आ जाती है। ठीक हुए पशुओं का शरीर खुरदरा तथा उनमें कभी कभी हांफना रोग होजाता है। बैलों में भारी काम करने की क्षमता खत्म हो जाती है।

उपचार:- इस रोग का कोई निश्चित उपचार नहीं है लेकिन बीमारी की गम्भीरता को कम करने के लिए लक्षणों के आधार पर पशु का उपचार किया जाता है। रोगी पशु में सेकैन्डरी संक्रमण को रोकने के लिए उसे पशु चिकित्सक की सलाह पर एन्टीबायोटिक के टीके लगाए जाते हैं। मुंह व खुरों के घावों को फिटकरी या पोटाश के पानी से धोते हैं। मुंह में बोरो-गिलिसरीन तथा खुरों में किसी एन्टीएप्टिक लोशन या क्रीम का प्रयोग किया जा सकता है।

रोग से बचाव:- (१) इस बीमारी से बचाव के लिए पशुओं को पोलीवेलेंट वेक्सीन के वर्ष में दो वार टीके अवश्य लगवाने चाहिए। बच्छे/बच्छियों में पहला टीका १ माह की आयु में, दूसरा तीसरे माह की आयु तथा तीसरा ६ माह की उम्र में और उसके बाद नियमित सारिणी के अनुसार टीके लगाए जाने चाहिए।

(२) बीमारी हो जाने पर रोग ग्रस्त पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए।

(३) बीमार पशुओं की देख-भाल करने वाले व्यक्ति को भी स्वस्थ पशुओं के बाड़े से दूर रहना चाहिए।

(४) बीमार पशुओं के आवागमन पर रोक लगा देना चाहिए।

(५) रोग से प्रभावित क्षेत्र से पशु नहीं खरीदना चाहिए।

(६) पशुशाला को साफ-सुथरा रखना चाहिए।

(७) इस बीमारी से मरे पशु के शव को खुला न छोड़कर गाढ़ देना चाहिए।

२. पशु प्लेग (रिन्डरपेस्ट):

यह रोग भी एक विषाणु से पैदा होने वाला छूतदार रोग है जोकि जुगाली करने वाले लगभग सभी पशुओं को होता है। इसमें पशु को तीव्र दस्त अथवा पेचिस लग जाते हैं। यह रोग स्वस्थ पशु को रोगी पशु के सीधे संपर्क में आने से फैलता है। इसके अतिरिक्त वर्तनों तथा देखभाल करने वाले व्यक्ति द्वारा भी यह बीमारी फैल सकती है। इसमें पशु को तेज बुखार होजाता है तथा पशु बेचैन होजाता है। दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है और पशु की आंखें सुर्ख लाल होजाती हैं। २-३ दिन के बाद पशु के मुंह में होंठ, मसूड़े व जीभ के नीचे दाने निकल आते हैं जो बाद में घाव का रूप ले लेते हैं। पशु के मुंह से लार निकलने लगती है तथा उसे पतले व बदबूदार दस्त लग जाते हैं

जिनमें खून भी आने लगता है। इसमें पशु बहुत कमजोर होजाता है तथा उसमें पानी की कमी होजाती है। इस बीमारी में पशु की ३-९ दिनों में मृत्यु हो जाती है। इस बीमारी के प्रकोप से विश्व भर में लाखों की संख्या में पशु मरते थे लेकिन अब विश्व स्तर पर इस रोग के उन्मूलन की योजना के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा लागू की गयी रिन्डरपेस्ट इरेडीकेशन परियोजना के तहत लगातार शत प्रतिशत रोग निरोधक टीकों के प्रयोग से अब यह बीमारी प्रदेश तथा देश में लगभग समाप्त होचुकी है।

३. पशुओं में पागलपन या हलकजाने का रोग (रेबीज़):

इस रोग को पैदा करने वाले सूक्ष्म विषाणु हलकाये कुत्ते , बिल्ली , बन्दर, गीदड़, लोमड़ी या नेवले के काटने से स्वस्थ पशु के शरीर में प्रवेश करते हैं तथा नाड़ियों के द्वारा मष्तिस्क में पहुंच कर उसमें बीमारी के लक्षण पैदा करते हैं। रोग ग्रस्त पशु की लार में यह विषाणु बहुतायत में होता है तथा रोगी पशु द्वारा दूसरे पशु को काट लेने से अथवा शरीर में पहले से मौजूद किसी घाव के ऊपर रोगी की लार लग जाने से यह बीमारी फैल सकती है। यह बीमारी रोग ग्रस्त पशुओं से मनुष्यों में भी आ सकती है अतः इस बीमारी का जन स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत महत्व है। एक बार पशु अथवा मनुष्य में इस बीमारी के लक्षण पैदा होने के बाद उसका फिर कोई इलाज नहीं है तथा उसकी मृत्यु निश्चित् है। विषाणु के शरीर में घाव आदि के माध्य्म से प्रवेश करने के बाद १०दिन से २१० दिनों तक की अवधि में यह बीमारी हो सकती है। मस्तिष्क के जितना अधिक नजदीक घाव होता है उतनी ही जल्दी बीमारी के लक्षण पशु में पैदा होजाते हैं जैसे कि सिर अथवा चेहरे पर काटे गए पशु में एक हफ्ते के बाद यह रोग पैदा हो सकता है।

लक्षण:- रेबीज़ मुख्यतः दो रूपों में देखी जाती है, पहला जिसमें रोग ग्रस्त पशु काफी भयानक होजाता है तथा दूसरा जिसमें वह बिल्कुल शान्त रहता है। पहले अथवा उग्र रूप में पशु में रोग के सभी लक्षण स्पष्ट दिखायी देते हैं लेकिन शान्त रूप में रोग के लक्षण बहुत कम अथवा लगभग नहीं के बराबर ही होते हैं।

कुत्तों में इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में व्यवहार में परिवर्तन होजाता है तथा उनकी आंखें अधिक तेज नजर आती हैं । कभी-कभी शरीर का तापमान भी बढ़ जाता है। २-३ दिन के बाद उसकी बेचैनी बढ़ जाती है तथा उसमें बहुत ज्यादा चिड़-चिड़ापन आ जाता है। वह काल्पनिक वस्तुओं की ओर अथवा बिना प्रयोजन के इधर -उधर काफी तेजी से दौड़ने लगता है तथा रास्ते में जो भी मिलता है उसे वह काट लेता है। अन्तिम अवस्था में पशु के गले में लकवा होजाने के कारण उसकी आवाज बदल जाती है, शरीर में कपकपी तथा चाल में लड़खड़ाहट आजाती है तथा वह लकवा ग्रस्त होकर अचेतन अवस्था में पड़ा रहता है। इसी अवस्था में उसकी मृत्यु होजाती है।

गाय व भैंसों में इस बीमारी के भयानक रूप के लक्षण दिखते हैं । पशु काफी उत्तेजित अवस्था में दिखता है तथा वह बहुत तेजी से भागने की कोशिश करता है। वह जोर-जोर से रम्भाने लगता है तथा बीच-बीच में जम्भाइयाँ लेता हुआ दिखाई देता है। वह अपने सिर को किसी पेड़ अथवा दीवाल के साथ टकराता है। कई पशुओं में मद के लक्षण भी दिखायी दे सकते हैं। रोग ग्रस्त पशु शीघ्र ही दुर्बल होजाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

मनुष्यों में इस बीमारी के प्रमुख लक्षणों में उत्तेजित होना, अधिक चिन्तित होजाना, पानी अथवा कोई खाद्य पदार्थ को निगलने में काफी तकलीफ महसूस करना तथा अन्त में लकवा होना आदि शामिल हैं।

उपचार तथा रोकथाम: एक बार लक्षण पैदा होजाने के बाद इस बीमारी का कोई इलाज नहीं है। जैसे ही किसी स्वस्थ पशु को इस बीमारी से ग्रस्त पशु काट लेता है उसे तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय में ले जाकर इस बीमारी से बचाव का टीका लगवाना चाहिए। इस कार्य में ढील बिल्कुल नहीं बरतनी चाहिए क्योंकि ये टीके तब तक ही प्रभावकारी हो सकते हैं जब तक कि पशु में रोग के लक्षण पैदा नहीं होते । पालतू कुत्तों को इस बीमारी से बचाने के लिए नियमित रूप से टीके लगवाने चाहिए तथा आवारा कुत्तों को समाप्त कर देना चाहिए। पालतू कुत्तों का पंजीकरण स्थानीय संस्थाओं द्वारा करवाना चाहिए तथा उनके नियमित टीकाकरण का दायित्व निष्ठापूर्वक मालिक को निभाना चाहिए।

(ख) जीवाणु जनित रोग-

१. गलघोंटू रोग(एच.एस.):

यह गाय व भैंसों में होने वाला एक बहुत ही घातक तथा छूतदार रोग है जोकि अधिकतर बरसात के मौसम में होता है। यह गोपशुओं की अपेक्षा भैंसों में अधिक पाया जाता है। यह रोग बहुत तेजी से फैलकर बड़ी संख्या में पशुओं को अपनी चपेट में लेकर उनकी मौत कारण बन जाता है जिससे पशु पालकों को भारी नुकसान उठाना पडता है। इस रोग के प्रमुख लक्षणों में तेज बुखार, गले में सूजन, सांस लेने में तकलीफ, जीभ निकालकर सांस लेना तथा सांस लेते समय तेज आवाज होना आदि शामिल हैं। कई बार बिना किसी स्पष्ट लक्षणों के ही पशु की अचानक मृत्यु हो जाती है।

उपचार व रोकथाम:- इस रोग से ग्रस्त हुए पशु को तुरन्त पशु चिकित्सक को दिखाना चाहिए अन्यथा पशु की मौत हो जाती है। इसके उपचार के लिए पशु को एन्टीबायोटिक अथवा एन्टीबेक्टीरियल दवा के टीके नस में लगाए जाते हैं। सही समय पर उपचार दिए जाने पर रोग ग्रस्त पशु को बचाया जा सकता है। इस रोग की रोकथाम के लिए रोगनिरोधक टीके लगाए जाते हैं। पहला टीका ३ माह की आयु में दूसरा ९ माह की अवस्था में तथा इसके बाद हर साल यह टीका लगाया जाता है। ये टीके पशु चिकित्सा संस्थानों में निःशुल्क लगाए जाते हैं।

२. लंगड़ा बुखार (ब्लैक क्वार्टर):

जीवाणुओं से फैलने वाला यह रोग गाय व भैंसों दोनों को होता है लेकिन गोपशुओं में यह बीमारी अधिक देखी जाती है तथा इससे अच्छे व स्वस्थ पशु ही ज्यादातर प्रभावित होते हैं। इस रोग में पिछली अथवा अगली टांगों के ऊपरी भाग में भारी सूजन आजाती है जिससे पशु लंगड़ा कर चलने लगता है या फिर बैठ जाता है। पशु को तेज बुखार हो जाता है तथा सूजन वाले स्थान को दबाने पर कड़- कड़ की आवाज आती है।

उपचार व रोकथाम:- रोग ग्रस्त पशु के उपचार हेतु तुरन्त नजदीकी पशु चिकित्सालय में सम्पर्क करना चाहिए ताकि पशु को शीघ्र उचित उपचार मिल सके। देर करने से पशु को बचाना लगभग

असंभव होजाता है क्योंकि जीवाणुओं द्वारा पैदा हुआ जहर (टोक्सीन) शरीर में पूरी तरह फैल जाता है जोकि पशु की मृत्यु का कारण बन जाता है। उपचार के लिए पशु को ऊंची डोज में प्रोकेन पेनिसिलीन के टीके लगाए जाते हैं तथा सूजन वाले स्थान पर भी इसी दवा को सुई द्वारा माँस में डाला जाता है। इस बीमारी से बचाव के लिए पशु चिकित्सा संस्थानों में रोग निरोधक टीके निःशुल्क लगाए जाते हैं अतः पशु पालकों को इस सुविधा का अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

३. ब्रुसिल्लोसिस (पशुओं का छूतदार गर्भपात):

जीवाणु जनित इस रोग में गोपशुओं तथा भैंसों में गर्भावस्था के अन्तिम त्रैमास में गर्भपात होजाता है। यह रोग पशुओं से मनुष्यों में भी आसकता है। मनुष्यों में यह उतार -चढ़ाव वाला बुखार (अंड्युलेण्ट फीवर) नामक बीमारी पैदा करता है। पशुओं में गर्भपात से पहले योनि से अपारदर्शी पदार्थ निकलता है तथा गर्भपात के बाद पशु की जेर रुक जाती है। इसके अतिरिक्त यह जोड़ों में आर्थ्रायटिस (जोड़ों की सूजन) पैदा कर सकता है।

उपचार व रोकथामः- अब तक इस रोग का कोई प्रभाव कारी इलाज नहीं है। यदि क्षेत्र में इस रोग के ५% से अधिक पोजिटिव केस हों तो रोग की रोकथाम के लिए बच्छियों में ३-६ माह की आयु में ब्रुसेल्ला-अबोर्टस स्ट्रेन-१९ के टीके लगाए जा सकते हैं। पशुओं में प्रजनन की कृत्रिम गर्भाधान पद्यति अपना कर भी इस रोग से बचा जा सकता है।

(ग) रक्त प्रोटोज़ोआ जनित रोग-

१. बबेसिओसिस अथवा टिक फीवर (पशुओं के पेशाब में खून आना):

यह बीमारी पशुओं में एक कोशिकीय जीव जिसे प्रोटोज़ोआ कहते हैं से होती है। बबेसिया प्रजाति के प्रोटोज़ोआ पशुओं के रक्त में चिचड़ियों के माध्यम से प्रवेश कर जाते हैं तथा वे रक्त की लाल रक्त कोशिकाओं में जाकर अपनी संख्या बढ़ाने लगते हैं जिसके फलस्वरूप लाल रक्त कोशिकायें नष्ट होने लगती हैं। लाल रक्त कोशिकाओं में मौजूद हीमोग्लोबिन जोकि इन कोशिकाओं का एक महत्वपूर्ण भाग है, कोशिकाओं से बाहर आजाता है। रक्त से यह हीमोग्लोबिन पेशाब के द्वारा शरीर से बाहर निकलने लगता है जिससे पेशाब का रंग कॉफी की तरह होजाता है। इस रोग से ग्रस्त पशु को पहले तेज बुखार होजाता है तथा बाद में उसका पेशाब कॉफी के रंग का होजाता है। कभी कभी उसे खून वाले दस्त भी लग जाते हैं। इसमें पशु खून की कमी होजाने से बहुत कमजोर होजाता है । पशु में पीलिया के लक्षण भी दिखायी देने लगते हैं तथा यदि समय पर इलाज न कराया जाय तो पशु की मृत्यु हो जाती है।

उपचार व रोकथामः- यदि समय पर पशु का इलाज कराया जाये तो पशु को इस बीमारी से बचाया जा सकता है। इसमें बिरेनिल के टीके पशु के भार के अनुसार मांस में दिए जाते हैं तथा खून बढाने वाली दवाओं का प्रयोग किया जाता है। इस बीमारी से पशुओं को बचाने के लिए उन्हें चिचड़ियों के प्रकोप से बचाना जरूरी है क्योंकि ये रोग चिचड़ियों के द्वारा ही पशुओं में फैलता है।

(घ) बाह्य तथा अंतःपरजीवी जनित रोग-

१. पशुओं के शरीर पर जुएं, चिचड़ी तथा पिस्सुओं का प्रकोप:

पशुओं के शरीर पर बाह्य परजीवी जैसे कि जुएं, पिस्सू या चिचड़ी आदि प्रकोप कर पशुओं

का खून चूसते हैं जिससे उनमें खून की कमी हो जाती है तथा वे कमजोर हो जाते हैं। इन पशुओं की दुग्ध उत्पादन क्षमता घट जाती है तथा वे अन्य बहुत सी बीमारियों के शिकार होजाते हैं। बहुत से परजीवी जैसे कि चिचड़ियां आदि पशुओं मे कुछ अन्य बीमारी जैसे टिक-फीवर का संक्रमण भी कर देते हैं । पशुओं में बाह्य परजीवी के प्रकोप को रोकने के लिए अनेक दवाइयां उपलब्ध हैं जिन्हें पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार प्रयोग करके इनसे बचा जा सकता है।

२. पशुओं में अंतः परजीवी प्रकोप:

पशुओं की पाचन नली में भी अनेक प्रकार के परजीवी पाए जाते है जिन्हें अंतः परजीवी कहते हैं। ये पशु के पेट, आंतों, यकृत आदि में रहकर उसके खून व खुराक पर निर्वाह करते हैं जिससे पशु कमजोर होजाता है तथा वह अन्य बहुत सी बीमारियों का शिकार हो जाता है। इससे पशु की उत्पादन क्षमता में भी कमी आजाती है।

पशुओं को उचित आहर देने के बाबजूद यदि वे कमजोर दिखायी दें तो इनके गोबर के नमूनों का पशु चिकित्सालय में परीक्षण कराना चाहिए। परजीवी के अंडे गोबर के नमूनों में देखकर पशु को उचित दवा दी जाती है जिससे परजीवी नष्ट होजाते हैं ।

अध्याय-९

चारे का भंडारण

पशुओं से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए उन्हें पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक चारे की

आवश्यकता होती है। इन चारों को पशुपालक या तो स्वयं उगाता है या फिर कहीं और से खरीद कर मंगाता है। चारे की फसल उगाने का एक खास समय होता है जोकि अलग-अलग चारे के लिए अलग- अलग है। चारे को अधिकांशतः हरी अवस्था में पशुओं को खिलाया जाता है तथा इसकी अतिरिक्त मात्रा को सुखाकर भविष्य में प्रयोग करने के लिए भंडार कर लिया जाता है ताकि चारे की कमी के समय उसका प्रयोग पशुओं को खिलाने के लिए किया जासके। चारे का इस तरह से भंडारण करने से उसमें पोषक तत्व बहुत कम रह जाते हैं । इसी चारे का भंडारण यदि वैज्ञानिक तरीके से किया जाय तो उसकी पौष्टिकता में कोई कमी नहीं आती तथा कुछ खास तरीकों से इस चारे को उपचारित करके रखने से उसकी पौष्टिकता को काफी हद तक बढ़ाया भी जा सकता है। विभिन्न चारों को भंडारण करने की कुछ विधियां नीचे दी जारही हैं।

१. घास को सुखाकर रखना (हे बनाना):

हे बनाने के लिए हरे चारे या घास को इतना सुखाया जाता है जिससे कि उसकी नमी की मात्रा १५-२०% तक ही रह जाय। इससे पादप कोशिकाओं तथा जीवाणुओं की एन्जाइम क्रिया रुक जाती है लेकिन इससे चारे की पौष्टिकता में कमी नहीं आती। हे बनाने के लिए लोबिया, बरसीम, लूसर्न, सोयाबीन, मटर आदि लेग्यूम्स तथा ज्वार, नेपियर,जौ, जवी, बाजरा, ज्वार, मक्की, गिन्नी, अंजन आदि घासों का प्रयोग किया जासकता है। लेग्यूम्स घासों में सुपाच्य तत्व अधिक होते हैं तथा इनमें प्रोटीन व विटामिन ए. डी. व ई.भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। दुग्ध उत्पादन के लिए ये फसलें बहुत उप्युक्त होती हैं। हे बनाने के लिए चारा सुखाने हेतु निम्न लिखित तीन विधियों में से कोई भी विधि अपनायी जा सकती है।

(क) चारे को परतों में सुखाना:- जब हरे चारे की फसल फूल आने वाली अवस्था में होती है तो उसे काटकर ९ -९'' की परतों में पूरे खेत में फैला देते हैं तथा बीच- बीच में उसे पलटते रहते हैं जब तक कि उसमें पानी की मात्रा लगभग १५% तक न रह जाय। इसके बाद इसे इकट्ठा कर लिया जाता है तथा ऐसे स्थान पर जहां वर्षा का पानी न आसके इसका भंडारण कर लिया जाता है।

(ख) चारे को गट्ठर बनाकर सुखाना:- इसमें चारे को काटकर २४ घंटों तक खेत में पड़ा रहने देते हैं। इसके बाद उसे छोटी-छोटी ढेरियों अथवा गट्ठरों में बांध कर पूरे खेत में फैला देते हैं। इन गट्ठरों को बीच-बीच में पलटते रहते हैं जिससे नमी की मात्रा घट कर लगभग १८% तक हो जाए।

(ग) चारे को तिपाई विधि द्वारा सुखाना:- जहां भूमि अधिक गीली रहती हो अथवा जहां वर्षा अधिक होती हो ऐसे स्थानों पर खेतों में तिपाइयां गाढ़कर चारे की फसलों को उन पर फैला देते हैं । इस प्रकार वे भूमि के बिना संपर्क में आए हवा व धूप से सूख जाती हैं। कई स्थानों पर घरों की क्षत पर भी घासों को सुखा कर हे बनाया जाता है। प्रदेश के मध्यम व ऊंचे क्षेत्रों में हे (सूखे घास) को कूप अथवा गुम्बद की शक्ल के ढेर जिन्हें स्थानीय भाषा में घोड़ कहते हैं में ठीक ढंग से व्यवस्थित करके रखा जाता है। इनका आकार कोन की तरह होने के कारण इन पर वर्षा का पानी खड़ा नहीं हो पाता जिससे चारे की पौष्टिकता में कमी नहीं आती ।

२. सूखे चारे की पौष्टिकता बढ़ाना:

(चारे का यूरिया द्वारा उपचार)

सूखे चारे जैसे भूसा(तूड़ी), पुराल आदि में पौष्टिक तत्व लिगनिन के अंदर जकड़े रहते हैं जोकि पशु के पाचन तन्त्र द्वारा प्रयोग नहीं किए जा सकते। इन चारों का कुछ रासायनिक पदार्थों द्वारा उपचार करके इनके पोषक तत्वों को लिगनिन से अलग कर लिया जाता है। इसके लिए यूरिया उपचार की विधि सबसे सस्ती तथा उत्तम है।

उपचार की विधि: - एक क्विन्टल सूखे चारे जैसे पुआल या तूड़ी के लिए चार किलो यूरिया का ५० किलो साफ पानी में घोल बनाते हैं। चारे को समतल तथा कुछ ऊंचाई बाले स्थान पर ३-४ मीटर की गोलाई में ६'' ऊंचाई की तह में फैला कर उस पर यूरिया के घोल का छिड़काव करते हैं। चारे को पैरों से अच्छी तरह दबा कर उस पर पुनः सूखे चारे की एक और पर्त बिछा दी जाती है और उस पर यूरिया के घोल का समान रूप से छिड़काव किया जाता है। इस तरह तह के ऊपर तह बिछाकर २५ क्विन्टल की ढेरी बनाकर उसे एक पोलीथीन की शीट से अच्छी तरह से ढक दिया जाता है। यदि पोलीथीन की शीट उपलब्ध न हो तो उपचारित चारे की ढेरी को गुम्बदनुमा बनाते हैं जिसे ऊपर से पुआल आदि से ढक दिया जाता है। उपचारित चारे को ३ सप्ताह तक ऐसे ही रखा जाता है जिससे उसमें अमोनिया गैस बनती है जो घटिया चारे को पौष्टिक तथा पाच्य बना देती है। इसके बाद इस चारे को पशु को खालिस या फिर हरे चारे के साथ मिलाकर खिलाया जा सकता है।

यूरिया उपचार से लाभ: -

१. उपचारित चारा नरम व स्वादिष्ट होने के कारण पशु उसे खूब चाव से खाते हैं तथा चारा बरवाद नहीं होता।

२. पांच या ६ किलो उपचारित पुआल खिलाने से दुधारू पशुओं में लगभग १ किलो दूध की वृद्धि हो सकती है।

३. यूरिया उपचारित चारे को पशु आहार में सम्मिलित करने से दाने में कमी की जा सकती है जिससे दूध के उत्पादन की लागत कम हो सकती है।

४. बछड़े/बच्छियों को यूरिया उपचारित चारा खिलाने से उनका बजन तेजी से बढ़ता है तथा वे स्वस्थ दिखायी देते हैं।

सावधानियाँ:-

(१) यूरिया का घोल साफ पानी में तथा यूरिया की सही मात्रा के साथ बनाना चाहिए।

(२) घोल में यूरिया पूरी तरह से घुल जानी चाहिए।

(३) उपचारित चारे को ३ सप्ताह से पहले पशु को कदापि नहीं खिलाना चाहिए।

(४) यूरिया के घोल को चारे के ऊपर समान रूप से छिड़कना चाहिए।

३. साइलेज बनाना:

हरा चारा जिसमें नमी की पर्याप्त मात्रा होती है को हवा की अनुपस्थिति में जब किसी गड्ढे में दवाया जाता है तो किण्डवन की क्रिया से वह चारा कुछ समय बाद एक अचार की तरह बन जाता है जिसे साइलेज कहते हैं। हरे चारे की कमी होने पर साइलेज का प्रयोग पशुओं को खिलाने के लिए किया जाता है।

साइलेज बनाने योग्य फसलें: - साइलेज लगभग सभी घासों से अकेले अथवा उनके मिश्रण से बनाया जा सकता है। जिन फसलों में घुलन शील कार्बोहाइड्रेट्स अधिक मात्रा में होते हैं जैसे कि ज्वार, मक्की,जवी, गिन्नी घास, नेपियर,सिटीरिया तथा घासनियों की घास आदि, साइलेज बनाने के लिए उपयुक्त होती हैं। फली दार फसलों जिनमें कार्बोहाइड्रेट्स कम तथा नमी की मात्रा अधिक होती है, को अधिक कार्बोहाइड्रेट्स वाली फसलों के साथ मिलाकर अथवा उनमें शीरा मिला कर साइलेज के लिए प्रयोग किया जा सकता है। साइलेज बनाने के लिए चारे की फसलों को फूलने से लेकर दानों के दूधिया होने तक की अवस्था में काट लेना चाहिए। साइलेज बनाते समय चारे में नमी की मात्रा ६५% होनी चाहिए।

साइलेज के गड्ढे / साइलोपिट्स:- साइलेज जिन गड्ढों में बनाया जाता है उन्हें साइलोपिट्स कहते हैं। साइलो पिट्स कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे ट्रेन्च साइलो, बंकर साइलो, टावर साइलो आदि। ग्रामीण परिस्थितियों में जमीन के नीचे गोलाकार साइलो बनाने सस्ते व आसान होते हैं। आठ फुट व्यास तथा १२ फुट गहराई बाले गड्ढे में ४ पशुओं के लिए तीन माह तक का साइलेज बनाया जा सकता है। गड्ढा (साइलो) ऊंचे , अच्छे निकास वाले तथा सूखे स्थान पर बनाना चाहिए। साइलो का फर्श जमीन में जल स्तर से ऊंचा होना चाहिए तथा इसे भली प्रकार से कूटकर सख्त बना लेना चाहिए। साइलो के फर्श व दीवारें पक्की बनानी चाहिए और यदि ये सम्भव न हो तो फर्श व दीवारों की लिपाई भी की जासकती है।

साइलेज बनाने की विधि:-

साइलेज बनाने के लिए जिस भी हरे चारे का इस्तेमाल करना हो , उसे उपयुक्त अवस्था में खेत से क़ाट कर २ से ५ सेन्टीमीटर के टुकड़ों में कुट्टी बना लेना चाहिए ताकि ज्यादा से ज्यादा चारा साइलो पिट में दबा कर भरा जा सके। कुट्टी किया हुआ चारा खूब दबा -दबा कर गड्ढे में भरा जाता है तथा इसका लेवल गड्ढे के मुंह के लेवल से लगभग एक मीटर ऊंचाई तक लेजाते हैं ताकि बरसात का पानी ऊपर न टिक सके। फिर इसके ऊपर पोलीथीन की शीट बिछाकर ऊपर से १८-२०से.मी. मोटी मिट्टी की परत बिछा दी जाती है। इस परत को गोबर व चिकनी मिट्टी से लीप दिया जाता है। दरारें पड़ जाने पर उन्हें मिट्टी से बन्द करते रहना चाहिए ताकि हवा व पानी गड्ढे में प्रवेश न कर सकें। लगभग ४५ से ६० दिनों में साइलेज बन कर तैयार होजाता है जिसे गड्ढे को एक तरफ से खोलकर मिट्टी व पोलीथीन शीट हटाकर आवश्यकतानुसार पशु को खिलाया जा सकता है। साइलेज निकालकर गड्ढे को पुनः पोलीथीन शीट व मिट्टी से ढक देना चाहिए। प्रारम्भ में साइलेज को थोड़ी मात्रा में अन्य चारों के साथ मिला कर पशु को खिलाना चहिए तथा धीरे-धीरे पशुओं को इसका स्वाद लग जाने पर इसकी मात्रा २०-३० किलो ग्राम प्रति पशु तक बढ़ायी जासकती है।

मुर्गियों को रोगों से बचाव हेतू समय पर टीकाकरण करना अनिवार्य है अन्यथा मुर्गियों में रोग फैलने से सारा झुण्ड प्रभावित हो जाएगा 1 जिससे मुर्गियों में उत्पादन क्षमता कम

हो जाती है तथा मृत्युदर बढ जाती है जिससे मुर्गीपालक को काफी आर्थिक हानि होती है 1 मुर्गियों में होने वाले रोग व टीकाकरण की सारणी निम्न प्रकार से है :–

कमांक	आयु	बीमारी	टीके का नाम	टीकाकरण माध्यम	मात्रा	टिप्पणी
1.	1 दिन	मैरेक्स	एचवीटी स्ट्रेन	त्वचा के नीचे	0.2 मि.ली.	लेयर व ब्रॉयलर में
2.	7 दिन	रानीखेत	एफ स्ट्रेन या लासोटा स्ट्रेन	नाक या मुंह में	2 बूंद	तदैव
3.	11–15दिन	इन्फैक्सीयस बर्सल या गम्बरो	गम्बरो लाईब	मुंह में या पीने के पानी में	2 बूंद	तदैव
4.	3–4 सप्ताह	रानीखेत	एफ–1 या लासोटा स्ट्रेन	नाक या मुंह में	2 बूंद	केवल ब्रॉयलर में 1
5.	4–5 सप्ताह	फाउल पौक्स	फाउल पौक्स बी एम/पीजन पौक्स टीका	परों की नाडी में	0.5 मि.ली.	केवल लेयर में
6.	6–8सप्ताह	रानीखेत	आरबी स्ट्रेन मुक्तेष्वर	मांस के अन्दर	0.5 मि.ली.	तदैव
7.	7–8 सप्ताह	गम्बरो	गम्बरो लाईव	पीने के पानी द्वारा	2 बूंद	तदैव
8.	13–14 सप्ताह	इन्फैक्सियस ब्रॉनकाईटिस	आईवीएम एडॉप्टिड	मुंह में या पीने के पानी द्वारा		तदैव
9.	14–15 सप्ताह	फाउल पॉक्स	बी एम स्ट्रेन	मांसपेषी में		
10	17–18 सप्ताह	रानीखेत	आरटूबी स्ट्रेन	मांस पेषी में	0.5 मि.ली.	तदैव

बैकयार्ड स्कीम के अन्तर्गत रंगीन कुक्कटों का पालन–पोशण

चेबरो व वनराज रंगीन प्रजातियों की प्रमुख विषेशता यह है कि देखने में तथा व्यवहार में यह पक्षी स्थानीय रूप से पाए जाने वाले पक्षियों के अनुरूप ही है तथा अपने आपको स्थानीय रूप से पाई जाने वाली प्राकृतिक एवं अन्य विपदाओं से बचाने में सक्षम है वहीं दूसरी ओर यह लगभग नाममात्र की खर्चे पर भली प्रकार पल जाते हैं तथा इनकी उत्पादन क्षमता स्थानीय पक्षियों से कई गुणा अधिक है 1 संकरवर्ण होने के कारण इनमें विदेषी पक्षियों के दोनों गुण अर्थात अण्डों का उत्पादन तथा खाने योग्य वजन षीध्र प्राप्त करने की योग्यता भी है 1 इस प्रकार यह पक्षी यहां के प्राकृतिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों में भली प्रकार अपने आपको सामायोजित कर लेते हैं तथा कुक्कट पालकों को एक अतिरिक्त आय का साधन प्रदान करते हैं 1 इन पक्षियों के पालने के लिए किसान को किसी अतिरिक्त बाडे पर कोइ अधिक ं व्यय नहीं करना पडता और न ही इनके खाने के लिए विषिश्ट चारे अथवा दवाईयों का प्रावधान करना पडता है 1 विभाग द्वारा प्रारम्भिक दो सप्ताह तक इनको अपने विभिन्न कुक्कट फार्मों में पालने के उपरान्त ही किसानों को वितरित किया जाता है जिससे प्रारम्भिक आयु में होने वाली मृत्युदर में भारी कमी पाई जाती है 1 इसके अतिरिक्त यदि चाहें तो एक दिन के चूजे भी उपलब्ध करवाये जाते हैं 1

पक्षियों का पालन–पोशण

एक दिन के अथवा दो या तीन सप्ताह की आयु में जब ये पक्षी किसानों के दरवाजे तक पहूंचाये जाते हैं तो षुरू में कुछ दिनों के लिए इन्हें किसी सुरक्षित स्थान पर और छत के नीचे रखना होता है मौसम को देखते हुए अगले दो तीन हफतों के लिए ठण्ड एवं परभक्षी जीवों से बचाना पडता है जहां तक इनके भोजन की व्यवस्था का प्रष्न है तो यह घर के रसोईघर से फालतू बचे हुए अन्न पर अपना गुजारा कर लेते हैं 1 यदि किसान जरूरत समझे और उसके पास उपलब्धता हो तो इन्हें दला हुआ अनाज जैसे मक्की गेहूं इत्यादि थोडी बहुत मात्रा में दिया जा सकता है दिन के समय इन पक्षियों को घर के आंगन में खुला छोड देना चाहिए तथा दिन छिपने पर फिर इन्हें भीतर सुरक्षित स्थान पर पहूंचा देना ठीक रहता है 1 6–7 हफतों की आयु प्राप्त करते करते ये पक्षी आपने आप में अपनी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम हो जाते हैं तथा आसपास विचरण करके अपने योग्य भोजन प्राप्त कर लेते हैं तथा उस वक्त तक इन्हें षाम के समय अपने घर लौट आने की आदत भी पड जाती है फिर भी इन दिनों में किसानों को इनपर सरसरी नजर तो रखनी ही पडती है अन्यथा यह किसी कुत्ते या बिल्ली का भोजन भी बन सकते हैं 1 आठवें सप्ताह तक पहूंचते–2 ये पक्षी घर के आंगन में स्थित किसी पेड अथवा बडी झाडी या छत के नीचे अपना स्थान चुन लेते हैं एवं रात का समय कुषलतापूर्वक व्यतीत करने में सक्षम हो जाते है 1 इस दौरान ये प्राप्त भोजन के द्वारा अपने वजन में हो रही बढौतरी तथा कद के ठीक विस्तार के कारण परभक्षियों से स्वयं को बचाने में और अधिक रूप में सक्षम पाते हैं और हर नए दिन के साथ इनकी निर्भरता मनुश्य पर कम से कम होती जाती है 1लेकिन किसान को यह ध्यान अवष्य रखना चाहिए कि दिन छिपने के समय सभी पक्षी कुषल घर आ गए हैं 1 हो सके तो इनकी गणना भी

कर लेनी चाहिए 1 अगले कुछ सप्ताहों में यह पक्षी इस योग्य हो जाते हैं कि मांस हेतू इनका विक्रय किया जा सके तथा साथ साथ ही अण्डों का उत्पादन भी आरम्भ हो जाता है 1 षुरू में मुर्गियां किसी भी अन्जान स्थान पर जाकर अण्डे दे सकती है इसलिए किसान को चाहिए कि वे अपने घर आंगन के कोनों में कुछेक स्थान पर पुआल डालकर इस प्रकार के बना दें जहां मुर्गियां अण्डे दे सकें ऐसा करने से एक ओर तो किसान को मुर्गियों द्वारा दिए गए सभी अण्डे प्राप्त हो जायेंगे तथा साथ ही साथ मुर्गियों को घर से बाहर अण्डे देने की आदत भी नहीं पडेगी ओर दिनों दिन ये पक्षी किसान के कम से कम देखभाल के होते हुए भी पूर्णरूप से सक्षम होकर उसके आर्थिक विकास के सहभागी बन जाते हैं 1

यदि किसान को इस दौरान किसी भी प्रकार की समस्या अथवा उत्कंठा हो तो वे अपने निकटतम पषु चिकित्सालय से सम्पर्क कर सकता हैं जहां से उसे आवष्यक जानकारी एवं डॉक्टरी सहायता लगभग निःषुल्क प्राप्त हो सकती है और समय बीतते वही किसान जो षुरू में षायद 10 पक्षियों के पालन में कुछ दिक्कत महसूस कर रहा हो बाद में स्वयं को 10 से अधिक पक्षियों को पालने हेतू सक्षम एवं आष्वस्त महसूस करता है 1

उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए यह स्पश्ट होता है कि भारत सरकार द्वारा संचालित तथा राज्य सरकार के पषुपालन विभाग की आरम्भिक सहायता के द्वारा किसान अपने जीवन तथा भोजन में पोश्टिकता का स्तर बडी आसानी से उठा सकता है 1

केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रायोजित मार्गदर्षी परियोजना

दुधारू पषु बीमा योजना

हिमाचल प्रदेष के जिला कांगड़ा व मण्डी के पषुपालकों को सूचित किया जाता है कि पषुपालन विभाग हिमाचल प्रदेष भारत सरकार द्वारा प्रायोजित इन जिलों में दुधारू पषु बीमा योजना मार्च,2006 से लागू करने जा रहा है । इस योजना की मुख्य विषेशतायें निम्न प्रकार से हैः–

- इस योजना का मुख्य उद्धेष्य पषुपालक को दुधारू पषु की मृत्यु होने की अवस्था में होने वाली आर्थिक हानि से बचाना है ।
- दुधारू पषुओं(गाय/भैंस) का बीमा तीन वर्शों के लिए एक ही बार इस योजना के अन्तर्गत करवाया जाएगा ।
- एक पषुपालक के अधिकतम दो दुधारू पषुओं का बीमा किया जाएगा ।
- जो दुधारू पषु प्रतिदिन औसतन 5–7 लीटर या इससे अधिक दूध देता हो(कम से कम 1500 लीटर प्रति 300 दिन ब्यांत) उस पषु का इस योजना के अन्तर्गत चयन किया जाएगा ।

- बीमा राषि के प्रिमियम के 50 प्रतिषत का भुगतान भारत सरकार व 50 प्रतिषत भुगतान पषुपालक द्वारा किया जाएगा ।
- बीमा किए जाने वाले दुधारू पषु की कीमत सम्बन्धित पषुपालक, पषु चिकित्सा अधिकारी व बीमा कम्पनी के अर्जैंट द्वारा सामूहिक रूप से निर्धारित की जाएगी ।
- दुधारू पषु की जांच , चिकित्सा प्रमाण पत्र या मृत्यु होने की स्थिति में षव परीक्षण प्रमाण पत्र जारी करने की कोई फीस पषुपालक से नहीं ली जाएगी ।
- दुधारू पषु के क्रय/विक्रय होने की स्थिति में केवल 15/– रूपये की राषि जमा करवाकर बीमा पॉलिसी एक मालिक से दूसरे मालिक के नाम स्थानान्तरित की जा सकती है ।
- इस योजना के अन्तर्गत दुधारू पषु की मृत्यु होने पर सभी वांछित दस्तावेज बीमा कम्पनी को सौंपने के 15 दिनों के भीतर देय राषि का भुगतान बीमा कम्पनी द्वारा किया जाएगा ।

इस योजना के अन्तर्गत अधिक जानकारी के लिए निकटतम पषु चिकित्सा अधिकारी/वरिश्ठ पषु चिकित्सा अधिकारी/सहायक निदेषक, पषु उत्पादन, पालमपुर/ उप निदेषक, पषु स्वास्थ्य/प्रजनन, धर्मषाला तथा मण्डी व निम्नलिखित दूरभाश नम्बरों पर सम्पर्क किया जा सकता है ।

निदेषालय स्तर पर :– 95–177–2830089, 2830167,2830163, 2830165.
जिला कांगड़ा–धर्मषाला :– 95–1892–222061
–पालमपुर :–95–1894–230467
जिला मण्डी –मण्डी :– 95–1905–223077